

**THE TIMES OF INDIA***Date: 26-10-26*

Borders & People

Arunachal dam is vital to counter China. But it works only with local support

TOI Editorials

Given national security and sensitivities involved, the violence in Arunachal's Pasighat over the proposed 11,200 MW Siang Upper Multipurpose Project (SUMP) must lead to an adjustment in govt's approach. The idea of building the dam on Siang river has been around for decades. But considerable local concerns had put the project on the backburner. Recent activities related to a pre-feasibility report on the dam – following an Arunachal govt cabinet resolution in Sept – have raised concerns that authorities are riding roughshod over people's objections.

To be clear, SUMP is of vital strategic importance. China is building a 60,000 MW mega dam upstream in Tibet. This presents a challenge for India as a lower riparian state. SUMP is meant to counter the impact of the Chinese dam, especially in regulating floods. Add to this the current geopolitical environment where China hasn't given up its grey-zone tactics along LAC – ITBP director general recently confirmed multiple faceoffs between Indian and Chinese troops at several locations in the Arunachal sector – and continues to covet Arunachal as so-called 'South Tibet', and it's imperative that India ups its infra game.

That said, it's equally important that border communities are taken into confidence, and their concerns allayed. They are very much part of the country's first line of defence. They are custodians of the land, and their support is crucial for the armed forces. In SUMP's case, locals say the project will submerge 27 villages and displace 1.5L people, apart from inundating paddy fields and heritage sites. But more immediately, their grievances stem from what they describe as govt's "militarised approach" to conducting the pre-feasibility survey by deploying large security contingents, and arresting anti-dam activists.

There's no denying that China is our biggest strategic-security challenge. But India being a democracy, it falls on GOI and Arunachal govt to address people's concerns regarding the Siang dam. True, China doesn't bother with such consultations and can build infra fast. But it pays long-term hidden costs as exemplified by recent natural disasters in Tibet. Arunachal too is ecologically sensitive, and mega projects here must take this into account. Moreover, failure to address local concerns in the Siang region will lead to other problems, allowing inimical forces to fish in troubled waters. So, yes, SUMP's time has come. But the project must go ahead only on the basis of transparency, wide consultations, ecological viability, and local stakeholdership.

Date: 26-10-26

Wicked surprise

The northeast monsoon is more unpredictable, and the south must be wary

Editorial



As India recovers from a monsoon-deficit year, there is both hope and trepidation regarding the prospects for that ‘other monsoon’, or the ‘northeast monsoon’. While contributing only around a quarter of India’s annual rainfall, it is largely focused on the south-east peninsula regions of Tamil Nadu, Puducherry, coastal Andhra Pradesh, Rayalaseema, south interior Karnataka and Keralam. The southwest monsoon, influenced by a strengthening El Niño, has already left its desiccating mark. Rainfall from June-September was 759.4 mm against 868.6 mm, a 12.6% deficit, the driest in 11 years. This has impacted kharif sowing and is reflected in food inflation.

The India Meteorological Department (IMD) has said that this year, the northeast monsoon rainfall, spanning October to December, would likely be ‘normal’, meaning in line with a 50-year average

and within a 12% error window. Most parts of the country, it said, are expected to receive below-normal rainfall, except some areas of northwest India and southern parts of peninsular India, where rainfall is likely to be normal to above-normal. The wide error window, however, is far less precise than its forecasts for the southwest monsoon with its margin of 5%, and can sometimes make the northeast monsoon the bearer of nasty surprises. For instance, December 1, 2015, saw the city of Chennai deluged by its heaviest rainfall in 24-hours in over a century; at least 500 lives were lost and 18 lakh people displaced in the State. That year and the present are linked by a common thread: a powerful El Niño. Associated with the heating up of the Central Pacific, the El Niño is linked to the drying up of the southwest monsoon rains but also yoked — not always — with a vigorous northeast monsoon. Other than in 2015, several El Niño years, such as 1997 and 2009, have been associated with above-normal rainfall between October and December in Tamil Nadu though El Niño years, such as 2002 and 1982, saw a poor northeast monsoon (and a predictably bad southwest monsoon). While the climate mechanisms linking a vigorous northeast monsoon and El Niño are still to be fully understood, it appears the warming patterns of the El Niño tend to deflect rain-bearing cyclonic circulations in unpredictable ways. Therefore, the Centre and the southern States ought to take enough precautions: from clearing up stormwater drains, fortifying shelters, making provisions for infrastructure damage and tightening weather warning forecasts to prepare for torrents.



दैनिक जागरण

Date: 26-10-26

लाइलाज हुई दलबदल की बीमारी

राज कुमार सिंह, (लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं)

पांच राज्यों में विधानसभा चुनाव का बिगुल अभी बजा भी नहीं कि उससे पहले नेताओं के दलबदल का सिलसिला चल निकला है। आने वाले दिनों में यह और तेज होगा। यह आंकड़ा विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र को शर्मसार करने वाला होना चाहिए कि 2022 से अब तक 111 सांसद-विधायक दलबदल कर चुके हैं, लेकिन राजनीतिक गलियारों में इसे लेकर किसी चेहरे पर शिकन नजर नहीं आती। एसोसिएशन फार डेमोक्रेटिक रिफार्म्स यानी एडीआर के उपरोक्त आंकड़े बताते हैं कि राजनीतिक दलों-नेताओं की सत्तालोलुपता अब एक घातक बीमारी बनकर लोकतंत्र को खोखला कर रही है। दलबदल की बढ़ती बीमारी के लिए किसी एक दल को दोष नहीं दिया जा सकता, लेकिन इससे राजनीतिक लाभ उठाने से परहेज भी किसी ने नहीं किया। भाजपा 12 साल से केंद्र में सत्तारूढ़ है। अधिकांश राज्यों में भी भाजपा या उसके गठबंधन राजग की सरकारें हैं। आम धारणा के अनुसार दलबदल के इस खेल से सर्वाधिक लाभान्वित भाजपा होनी चाहिए, लेकिन आंकड़े कुछ और ही कहानी कहते हैं। अनुपात के स्तर पर पिछले चार साल में दलबदल के खेल से लाभान्वित दलों में भाजपा दूसरे नंबर पर है। इसका सर्वाधिक लाभ नगालैंड में सत्तारूढ़ नगा पीपुल्स फ्रंट यानी एनपीएफ को मिला है, जिसे इस अवधि में 32 विधायक मिले। दूसरे और तीसरे नंबर पर क्रमशः भाजपा और एनसीपीआइ रहीं। नगालैंड में यह खेल एनपीएफ में उससे ही विभाजित होकर बनी नेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक प्रोग्रेसिव पार्टी (एनडीपीपी) के विलय के नाम पर खेला गया।

दलबदल के मामले में बंगाल दूसरे स्थान पर है, जहां 20 सांसदों ने दलबदल किया। विधानसभा चुनाव के बाद भाजपा की शह पर तृणमूल कांग्रेस के 28 में से 20 लोकसभा सदस्यों ने भी अपने दल से किनारा कर सीधे 'कमल' का दामन थामने के बजाय अल्पज्ञात एनसीपीआइ जैसा विकल्प चुना। चार राज्यसभा सदस्यों का भी तृणमूल से मोहभंग हो गया। त्रिपुरा में विधानसभा चुनाव लड़कर एक भी सीट न जीत पानेवाली एनसीपीआइ को अचानक 20 लोकसभा सांसद मिल जाना भारतीय लोकतंत्र का 'करिश्मा' ही कहा जा सकता है। इन दलबदलुओं पर अयोग्यता की तलवार लटकी है, लेकिन व्यवस्थागत विडंबना देखिए कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के बाद ही लोकसभा अध्यक्ष ने इन्हें कारण बताओ नोटिस दिया। महीनों पहले दलबदल का सुनियोजित खेल खेल चुके माननीयों को जवाब देने और उसके लिए दस्तावेज एकत्र करने के लिए अतिरिक्त समय देने की 'उदारता' भी स्पीकर ने दिखाई। कई बार तो ऐसे मामलों में अंतिम निर्णय संबंधित सदन का कार्यकाल समाप्त होने के बाद आता है। इसी साल आम आदमी पार्टी (आप) के सात राज्यसभा सदस्य भाजपा में शामिल हो गए। आप संयोजक अरविंद केजरीवाल के करीबी रहे और पंजाब के 'सुपर सीएम' कहे गए राघव चड्ढा काफी दिनों से बदले-बदले नजर आ रहे थे, लेकिन दलबदल के लिए दो-तिहाई सांसद जुटाने में समय लग गया। वैसे मौजूदा सांसद-विधायक

ही नहीं, पूर्व सांसद-पूर्व विधायक या बड़े नेताओं का दिल बदलने का पता भी दूसरे दल का पटका गले में पहनने के बाद ही चलता है। नेताजी इस अवसरवाद को अक्सर देश, समाज और लोकतंत्र के हित में 'जरूरी' करार देते हैं।

वर्ष 2014 में केंद्रीय सत्ता से विदाई और ऐतिहासिक चुनावी पराभव के बाद दल बदलने वाले कांग्रेसियों की संख्या राष्ट्रीय अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खरगे हजारों में बताते हैं। नेहरू-गांधी परिवार के करीबी बताए जाने वालों ने भी मुश्किल वक्त में 'हाथ' का साथ छोड़ने में संकोच नहीं किया। इस सूची में ज्योतिरादित्य सिंधिया, जितिन प्रसाद और आरपीएन सिंह, मिलिंद देवड़ा, अशोक चव्हाण और सुरेश पचौरी जैसे नाम शामिल हैं। पीढ़ियों से कांग्रेसी रहे पूर्व केंद्रीय मंत्री और पूर्व मुख्यमंत्री तक हाथ का साथ छोड़ने लगे, तब अवसरवाद के जरिये विचारधारा की विपन्नता ही बेनकाब होती है। जिस दल में गए, उससे भी यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि 'मुस्लिम तुष्टीकरण' की राजनीति करनेवाले ये 'भ्रष्ट' कांग्रेसी पटका बदलने भर से 'राष्ट्रवादी' बन गए या फिर खुद उसने सत्ता की खातिर विचारधारा को तिलांजलि दे दी? जब भी किसी बड़े नेता ने पार्टी छोड़ी तो कांग्रेस ने बताया कि उसे क्या-क्या दिया गया। सवाल अनुत्तरित है कि जो कुछ उन्हें दिया गया, क्या वे उसके लायक थे या नहीं? ये सवाल तब और महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जब आंकड़े बताते हैं कि 2014 के बाद दलबदल करने वाले कांग्रेसियों में लगभग 35 प्रतिशत तो सांसद-विधायक ही शामिल रहे। इनमें से 35 प्रतिशत विधायक भाजपा में गए। कांग्रेस के लगभग 20 प्रतिशत चुनावी उम्मीदवारों ने भी पार्टी छोड़ी। तथ्य यह भी है कि कांग्रेस छोड़ने वाले सभी नेता भाजपा में नहीं गए। महिला कांग्रेस की राष्ट्रीय अध्यक्ष सुष्मिता देव और फिल्म अभिनेता से राजनेता बने शत्रुघ्न सिन्हा ने तृणमूल कांग्रेस चुनी। शत्रुघ्न अभी तृणमूल में ही हैं, मगर सुष्मिता का नया ठिकाना एनसीपीआइ है। भाजपा पर अपने नेताओं को तोड़ने के आरोप लगाने वाली कांग्रेस भी दूसरे दलों के नेताओं को लेती रही है। महाराष्ट्र कांग्रेस के बड़े नेता नाना पटोले पूर्व भाजपाई हैं। भाजपा में वापस लौट आए कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री जगदीश शेट्टार को भी कांग्रेस ने विधानसभा चुनाव तो लड़वाया ही।

दरअसल राजनीति में सत्तालोलुपता एक वास्तविकता बन गई है। ज्यादातर नेता सिर्फ सत्ता में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हिस्सेदारी के आश्वासन अथवा फिर उसकी संभावना पर ही दलबदल या पालाबदल करते हैं, जैसे कि महाराष्ट्र में एकनाथ शिंदे एंड कंपनी या अजीत पवार खेमे ने किया। वैसे, बड़े नेताओं के दलबदल की चर्चा तो अक्सर होती रहती है, लेकिन अब यह बीमारी स्थानीय निकाय से लेकर विश्वविद्यालयों में छात्र संघ के चुनावों तक फैल गई है। स्पष्ट है कि जब तक राजनीतिक दल तात्कालिक लाभ के लिए दलबदलुओं पर दांव लगाते रहेंगे, दलबदल की बीमारी राजनीतिक व्यवस्था और लोकतंत्र को खोखला करती रहेगी।

Date: 26-10-26

सत्ता से अधिक व्यवस्था परिवर्तन जरूरी

विराग गुप्ता, (लेखक विधि मामलों के जानकार हैं)

शरद पूर्णिमा को भारत रत्न नानाजी देशमुख की जयंती समारोह का आयोजन हो रहा है। देश की वर्तमान चुनौतियों से निपटने के लिए समाज, सरकार, विपक्ष और उद्योगपति नानाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरणा ले सकते हैं। जेन-जी के आंदोलन और सड़कों पर हो रहे विरोध प्रदर्शन की सर्वाधिक चर्चा है। नानाजी ने जेपी के साथ मिलकर आपातकाल के खिलाफ युवाओं के सबसे बड़े आंदोलन से सत्ता परिवर्तन को सफल बनाया था। जनता पार्टी की सरकार में उन्होंने मंत्री पद लेने से इनकार करने के बाद सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया था। चित्रकूट में दीनदयाल शोध संस्थान और ग्रामोदय विश्वविद्यालय के माध्यम से उन्होंने गांवों के सशक्तीकरण से विकसित भारत का रोडमैप बनाया था। उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश की सीमा पर स्थित 80 गांवों को मुकदमेबाजी से मुक्त देखकर पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम बहुत प्रभावित हुए थे। उनके अनुसार पिछली सदी के आठवें दशक के बाद मानवीय स्पर्श से जुड़ी सामाजिक व्यवस्था कमजोर होने के साथ अदालतों में मुकदमेबाजी बढ़ गई।

वर्ष 2006 में भारत की आबादी लगभग 117 करोड़ थी और अदालतों में 2.87 करोड़ मुकदमे लंबित थे। उसके 20 साल बाद आबादी लगभग 25 प्रतिशत बढ़ी, लेकिन मुकदमों की संख्या 5.84 करोड़ यानी दोगुनी से ज्यादा हो गई है। मुकदमों की बढ़ती संख्या से तीन निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला, सरकारी अधिकारी अपनी जिम्मेदारी पूरी करने में विफल हैं, जिसकी वजह से न्यायपालिका की भूमिका बढ़ती जा रही है। दूसरा, पुलिस सुधार नहीं होने से गिरफ्तारी और जमानत से जुड़े मुकदमों की संख्या लगातार बढ़ रही है। तीसरा, संविधान लागू होने के 76 साल बाद भी न्यायिक व्यवस्था में जरूरी सुधार नहीं हुए। प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के सदस्य संजीव सान्याल के अनुसार मुकदमेबाजी के बढ़ते बोझ से उत्पादकता घटने के साथ विदेशी निवेश भी प्रभावित होता है। केंद्र सरकार ने जनविश्वास कानून के माध्यम से अनेक अपराधों को अनापराधिक बनाने के साथ तीन नए आपराधिक कानूनों को लागू किया है। डिजिटल दुनिया में संवाद, संचार, भुगतान, व्यापार सभी कुछ तेजी से हो रहा है, लेकिन हमारी न्यायिक व्यवस्था अभी भी कछुए की रफ्तार से आगे बढ़ रही है। सड़कों पर बढ़ रही अराजकता और अदालतों में हावी हो रहे भीड़तंत्र को रोकने के लिए पुलिस और न्यायिक सुधार जरूरी हैं।

चीन से बढ़ते आयात और अमेरिका के दबाव से स्वदेशी अर्थव्यवस्था पर बेहद दबाव है। गांवों को विवादों से मुक्त कराने के साथ नानाजी ने शिक्षा, स्वास्थ्य और कुटीर उद्योगों के विकास से आत्मनिर्भरता बढ़ाने के प्रकल्पों को सशक्त किया था। इसके लिए उन्होंने स्वदेशी पूंजी, ग्रामीण श्रम, आधुनिक विज्ञान और जनसहयोग को परस्पर जोड़ने का यत्न किया था। चार दशक पहले उन्होंने उद्योगपतियों को बुदेलखंड के चित्रकूट जैसे पिछड़े क्षेत्र में निवेश और आधुनिक तकनीक लाने के लिए प्रेरित किया। नानाजी ने देश के पहले ग्रामीण विश्वविद्यालय का

नाम महात्मा गांधी के नाम पर रखा। विनोबा भावे के भूदान आंदोलन से जुड़कर उन्होंने भूमिहीनों और वंचित वर्ग का सशक्तीकरण किया। जयप्रकाश नारायण और उनकी पत्नी प्रभावती के नाम से गोंडा में उन्होंने जयप्रभा ग्राम का नामकरण किया। उनका बचपन भुखमरी और संघर्षों में बीता, पर वे हिंसक और माओवादी नहीं बने। जन-आंदोलनों से चुनावी राजनीति और सत्ता परिवर्तन के बारे में नानाजी की सफलता से सभी दलों के नेता प्रेरणा ले सकते हैं।

वर्ष 2017 में नानाजी की स्मृति में जारी डाक टिकट के अनुसार समाज में परस्पर सहयोग से ही ग्रामोदय हो सकता है। वंचित वर्ग के लिए सब्सिडी और कल्याणकारी योजनाएं जरूरी हैं, लेकिन चुनावी लाभ के लिए रेवड़ियां और स्वावलंबन के बजाय रीलबाजी की बढ़ती संस्कृति विकसित भारत की राह में बड़ा रोड़ा है। भारत की शासन व्यवस्था में विदेशी ताकतों के हस्तक्षेप को कम करने के लिए एफसीआरए कानून को सख्त बनाया जा रहा है, लेकिन विदेशी सोशल मीडिया कंपनियों के माध्यम से चुनावी राजनीति और जन-आंदोलनों को संचालित करने से रोकने के लिए कानूनों को लागू नहीं किया जा रहा है। सोशल मीडिया और आनलाइन गेमिंग से बच्चों की सुरक्षा और ई-कामर्स के फास्टफूड के दौर में उनका खानपान स्वस्थ रखना परिवारों के लिए बड़ी चुनौती है, जिस पर सरकार को ध्यान देने की जरूरत है। यूपीआई, ओटीटी, ई-कॉमर्स, सीसीटीवी, स्पेस सैटेलाइट जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विदेशी कंपनियों का वर्चस्व चिंताजनक है। डाटा सेंटरों से पर्यावरण क्षति के बारे में भी सही विमर्श और कानूनों का अनुपालन जरूरी है। डाटा सुरक्षा कानून लागू नहीं होने और भारी मुनाफा कमा रही विदेशी टेक कंपनियों से टैक्स नहीं वसूलने से साइबर अपराधों के साथ आर्थिक असमानता बढ़ रही है। नानाजी ने चुनावी राजनीति से सत्ता परिवर्तन के बाद यह महसूस किया कि व्यवस्था परिवर्तन के लिए गांव और समाज को सशक्त करना जरूरी है। संविधान और कानून के शासन में जेन-जी के भरोसे को बनाए रखने के लिए नानाजी के सपनों के अनुसार न्यायिक तंत्र में जमीनी सुधार की जरूरत है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 26-10-26

रुपये में उतार-चढ़ाव भारत के लिए एक अहम संकेत

राजेश कुमार



भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) रुपया स्थिर रखने के लिए लगातार जद्दोजहद कर रहा है। आरबीआई विदेशी मुद्रा बाजार में दखल दे रहा है और सट्टेबाजी रोकने के लिए उसने मुद्रा डेरिवेटिव्स पर कई पाबंदियां लगाई हैं। केंद्रीय बैंक ने विशेष स्वैप योजनाओं के जरिये विदेशी मुद्रा भी जुटाई है। अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) के लिए विशेष योजना भी शुरू की गई थी। इस योजना को अच्छी प्रतिक्रिया मिली और बैंकों ने विदेशी मुद्रा अनिवासी बैंक (एफसीएनआर-बी) जमा के जरिये लगभग 133 अरब डॉलर जुटाए। इससे 4 सितंबर को समाप्त हुए सप्ताह

में भारत का विदेशी मुद्रा भंडार 785.71 अरब डॉलर के रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया।

कुछ लोगों ने इसे अनिश्चित आर्थिक माहौल में एक सुरक्षा इंतजाम (बफर) करने की कोशिश के रूप में देखा। हालांकि, जब आरबीआई ने इस कदम की घोषणा की थी तब भी उसके पास 680 अरब डॉलर से अधिक विदेशी मुद्रा भंडार था। मौजूदा स्थिति यह है कि विदेशी मुद्रा भंडार अपने रिकॉर्ड स्तर से लगभग 60 अरब डॉलर कम हो गया है। इस कमी का एक कारण केंद्रीय बैंक के पास मौजूद परिसंपत्तियों का पुनर्मूल्यांकन हो सकता है। मगर इससे यह भी पता चलता है कि केंद्रीय बैंक बाजार में काफी आक्रामक तरीके से दखल दे रहा है।

आरबीआई की घोषित नीति यह है कि वह बाजार में केवल अत्यधिक उतार-चढ़ाव नियंत्रित करने के लिए दखल देता है न कि रुपये का कोई खास स्तर बनाए रखने के लिए। हालांकि, मौजूदा हालात को देखते हुए ऐसा लगता है कि वह कुछ अन्य लक्ष्यों को भी साधने की कोशिश कर रहा है। संभवतः इसलिए क्योंकि वह रुपये को एक निश्चित स्तर से नीचे लुढ़कने से रोकना चाहता है। उदाहरण के लिए अगर डॉलर के मुकाबले रुपया 100 के स्तर पर पहुंच जाता है तो यह बड़ी खबर बन जाएगी और एक राजनीतिक मुद्दा भी बन सकता है। हालांकि, आर्थिक नीति बनाने वालों के लिए यह आंकड़ा बहुत मायने नहीं रखना चाहिए। वास्तव में ध्यान देने वाली बात यह है कि जिस रफ्तार से विदेशी मुद्रा भंडार कम हो रहा है उसे देखते हुए एफसीएनआर (बी) से बना सुरक्षा घेरा या बफर जल्द ही खत्म हो जाएगा।

बुनियादी स्तर पर स्थिति का निष्पक्ष आकलन करने और घरेलू नीतियों में उचित बदलाव करने की आवश्यकता है। मुद्रा बाजार में उतार-चढ़ाव का एक कारण पश्चिम एशिया संकट और कच्चे तेल की कीमतों पर इसका लगातार असर है। यह एक जायज चिंता है। चूंकि, संकट के समाधान का कोई स्पष्ट रास्ता नजर नहीं आ रहा है इसलिए ऊर्जा की ऊंची कीमतें मुद्रा बाजार की धारणा को प्रभावित करती रहेंगी। हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि भारत को पिछले दो वित्त वर्षों में भी भुगतान संतुलन घाटे का सामना करना पड़ा था।

भारत में आम तौर पर चालू खाते का घाटा रहता है जिसकी भरपाई वैश्विक पूंजी प्रवाह से की जाती है। चालू खाते का घाटा एक उचित स्तर पर रहना बड़ी चिंता की बात नहीं है। विदेशी पूंजी घरेलू बचत की कमी पूरी

करती है और यह भारत के व्यापक आर्थिक प्रबंधन ढांचे का एक अहम हिस्सा है। हालांकि, हाल में यह देखने को मिला है कि भारत पर्याप्त विदेशी पूंजी आकर्षित करने और उसे बनाए रखने में सफल नहीं रहा है। उदाहरण के लिए विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों ने वर्ष 2026 में अब तक 26 अरब डॉलर से अधिक मूल्य की भारतीय वित्तीय परिसंपत्तियां बेची हैं। लिहाजा समस्या केवल चालू खाते का घाटा तक सीमित नहीं है। असली बड़ी समस्या पूंजी खाता से जुड़ी है।

सवाल यह है कि आखिर भारत पर्याप्त पूंजी क्यों आकर्षित नहीं कर पा रहा है? इसके कम से कम दो कारण हो सकते हैं। पहला, आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) और इससे जुड़े क्षेत्रों में बढ़ता निवेश दुनिया भर की पूंजी को अपनी ओर खींच रहा है। एआई में इस उछाल के कारण ही भारतीय शेयर बाजार का प्रदर्शन कमजोर रहा है और विदेशी रकम बाहर जा रही है। लेकिन खबरों से पता चलता है कि एआई में निवेश की गति धीमी हो सकती है। वैश्विक स्तर पर यह भी तर्क दिया जा रहा है कि एआई में निवेश और इससे जुड़ी कंपनियों का मूल्यांकन बुलबुले जैसा है जो कभी भी फूट सकता है। कुछ लोगों का मानना है कि जब यह बुलबुला फूटेगा तो रकम वापस भारत जैसे बाजारों की ओर रुख करेगी।

हालांकि, यह बात एक उम्मीद जैसी लगती है लेकिन भारत के नीति-निर्माताओं को ऐसे तर्कों पर भरोसा नहीं रहना चाहिए। इसके विपरीत अगर मूल्यांकन में भारी गिरावट आती है तो इससे वैश्विक स्तर पर काफी वित्तीय अस्थिरता पैदा हो सकती है और शायद कोई संकट भी आ सकता है। अनुभव बताता है कि जब वैश्विक वित्तीय अनिश्चितता बहुत बढ़ जाती है तो पूंजी उभरते बाजारों के बजाय सुरक्षित परिसंपत्तियों की ओर चली जाती है। लिहाजा अगर मूल्यांकन में गिरावट आती है तो इससे पूंजी प्रवाह पर दबाव बढ़ सकता है (कम से कम कुछ समय के लिए) और भारत को इसके लिए तैयार रहना चाहिए।

दूसरी बात, विकसित देशों में बॉन्ड यील्ड का बढ़ना भी पूंजी प्रवाह प्रभावित कर रहा है। अगर कोई वैश्विक फंड प्रबंधन केवल अमेरिकी सरकारी बॉन्ड (जिन्हें दुनिया में सबसे सुरक्षित माना जाता है) रखकर सालाना 5 फीसदी से ज्यादा रिटर्न कमा सकता है तो वह उभरते बाजारों में निवेश करने का जोखिम क्यों उठाएगा? हालांकि, इस स्थिति का अंदाजा पहले ही लगाया जा सकता था। अमेरिका सहित विकसित देशों में सरकारी कर्ज काफी बढ़ गया है और यह संरचनात्मक रूप से बढ़ता ही जा रहा है। अमेरिका में सरकारी कर्ज का स्तर वर्ष 2019 में जीडीपी के लगभग 109 फीसदी से बढ़कर वर्ष 2031 तक 142 फीसदी से ऊपर जाने का अनुमान है।

दुनिया में संरचनात्मक बदलाव हो रहे हैं और उन्हें देखते हुए भारत को भी स्वयं को ढालना होगा। चालू और पूंजी खाते को लेकर जो रणनीतियां अपनाई जानी चाहिए वे सबको मालूम हैं। अगर इस बदलाव को केवल मुद्रा बाजार पर ही छोड़ दिया जाए तो एक समय बाद यह स्थिति काफी विकट हो सकती है।

वैज्ञानिक कामयाबी

संपादकीय

भारतीय भौतिक विज्ञानी अशोक सेन को दिया गया वर्ष 2026 का ऑस्कर क्लेन पदक भारतीय विज्ञान के लिए ऐतिहासिक अवसर है। विज्ञान की दुनिया में इस सम्मान को नोबेल तुल्य माना जाता है। साल 1988 में इसकी शुरुआत प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी ऑस्कर क्लेन के नाम से हुई थी और यह पदक पाना कोई मामूली बात नहीं है। यह पदक स्टॉकहोम विश्वविद्यालय और रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंसेज की नोबेल कमेटी फॉर फिजिक्स द्वारा प्रतिवर्ष दिया जाता है। यह सम्मान स्टीफन हॉकिंग को मिल चुका है और इसे प्राप्त करने वाले अशोक सेन पहले भारतीय वैज्ञानिक हैं। आम तौर पर भारत छोड़ चुके वैज्ञानिकों को ही कामयाब होते देखा जाता है। धारणा यह भी है कि भारत में रहकर शोध-आविष्कार संभव नहीं है। खुद विदेश में जा बसे वैज्ञानिक यह प्रचार करते हैं कि भारत में रहकर वैज्ञानिक कार्य असंभव है, पर ऐसे तमाम वैज्ञानिकों के लिए अशोक सेन एक माकूल जवाब हैं। जी हां, भारत में रहकर भी विज्ञान पर काम किया जा सकता है। विदेश जाने के मौके अशोक सेन को भी खूब मिले, पर उन्होंने अपने देश में ही रहकर सेवा करना स्वीकार किया और उनकी तपस्या साकार हुई।

बेंगलुरु स्थित अंतर्राष्ट्रीय सैद्धांतिक विज्ञान केंद्र (आईसीटीएस) के प्रोफेसर अशोक सेन ने यह सिद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है कि पांच स्ट्रिंग सिद्धांत, जिन्हें पहले अलग-अलग माना जाता था, एक ही मूल सिद्धांत के विभिन्न विवरण हो सकते हैं। ध्यान रहे, अशोक सेन ने 22 अक्टूबर को स्टॉकहोम में 'स्ट्रिंग से गुरुत्वाकर्षण और गुरुत्वाकर्षण से स्ट्रिंग' शीर्षक पर शानदार व्याख्यान से भौतिकी की दुनिया को चकित किया है। उसके बाद ही उन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ है। उन्होंने बताया कि उनकी खोज की वजह से कैसे गुरुत्वाकर्षण की व्याख्या हो सकती है और कैसे ब्लैक होल से संबंधित प्रश्नों के उत्तर देने में मदद मिल सकती है। असली चुनौती स्ट्रिंग सिद्धांत के भीतर एक ऐसा समाधान खोजना है, जो प्रकृति में देखे गए कणों से मेल खाता हो। इस दिशा में अशोक सेन की कामयाबी बहुत मायने रखती है। उनका अध्ययन कणों से आगे जाकर स्ट्रिंग को देखता है। वह मानते हैं कि एक स्ट्रिंग के विभिन्न कंपन अलग-अलग कणों के रूप में दिखाई दे सकते हैं। भौतिकी की दुनिया में अशोक सेन की दिखाई दिशा में अनेक वैज्ञानिक शोध-अध्ययन में लगे हुए हैं।

कोई दोराय नहीं, एक भारतीय वैज्ञानिक की इस अहम खोज और संघर्ष को आसानी से स्वीकार नहीं किया गया है। वह करीब तीन दशक से भौतिकी को आगे बढ़ाने में लगे हैं और ऐसा कतई नहीं है कि उनके योगदान को भारत में स्वीकार करने में देरी हुई है। ध्यान रहे, उन्हें साल 2001 में ही पद्म श्री और 2013 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था। उनके कठिन शोध प्रयासों को भारत में पहले ही सम्मान की नजर से देखा जा रहा

हैं और अब दुनिया भर में उनके प्रयासों को सराहना मिलेगी। वह आज भी स्ट्रिंग सिद्धांत के विकास और सत्यापन में लगे हैं और पूरे भारतीय विज्ञान के लिए प्रेरणा बन गए हैं। वह बचपन में गणित में माहिर थे और बाद में भौतिकी पढ़ाने वाले पिता से प्रेरित हुए। युवा होने पर उन्होंने सत्येंद्र नाथ बोस और मेघनाद साहा से प्रेरणा ग्रहण की। अमेरिका में उच्च अध्ययन के बाद उन्होंने भारत में सेवा का मार्ग चुना। यह भी गर्व की बात है कि वह प्रयागराज के हरीश-चंद्र अनुसंधान संस्थान में कई वर्ष रहे हैं और वहीं रहते हुए उन्होंने ज्यादातर शोध को अंजाम दिया है। निःसंदेह, अपने देश को अनेक अशोक सेन चाहिए।
